# मध्यकालीन संत काव्य में राष्ट्रीय एकता

**डॉ. सविता धुड़केवार**
असिस्टेंट प्रोफेसर
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई

**शोध सारांश :**

भारतीय संस्कृति में जन्मभूमि को स्वर्ग से भी अधिक महत्व दिया गया है । राष्ट्र का आधार एक निश्चित भौगोलिक सीमा होती है । इसमें रहने वाले लोगों के बीच आपसी प्रेम सद्भाव और मातृभूमि के प्रति प्रेम आदर ही राष्ट्रीय एकता का आधार है । जन्मभूमि को जननी का पद देकर मध्यकालीन संतों ने तत्कालीन समय मे ईश्वर भक्ति के साथ समाज में व्याप्त भेदभाव को दूर कर एकता का संदेश दिया । संत नामदेव, कबीरदास, गुरुनानक, रैदास, तुकाराम, पलटूदास, दादूदयाल आदि संतों ने एकता का संदेश दिया । जातिगत, धर्म–संप्रदायगत भेदभाव को भुलाकर समानता का उपदेश दिया ।

**बीज शब्द–** संत काव्य, राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक पतन, सामाजिक चेतना, आंतरिक शुद्धि, सांप्रदायिकता, एक–सूत्रता, सामाजिक हित ।

एक देश के निवासियों की आपसी एकता, भाईचारे के भाव से राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र विभिन्न जातियों, धर्मों और भाषाओं से ऊपर होता है । एक निश्चित भौगोलिक सीमा में समूहीकरण की भावना से प्रेरित एक सूत्र में बंधे लोग ही राष्ट्र का आधार है । व्यक्ति अपने राष्ट्र का अभिन्न अंग होता है, राष्ट्र से अलग होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं होता । राष्ट्रीयता का अर्थ अपनी जन्मभूमि से प्रेम करना है । राष्ट्रीयता का अर्थ केवल राज्य के प्रति अपार भक्ति ही नहीं है अपितु संपूर्ण देश के साथ–साथ उसके धर्म, भाषा, इतिहास तथा संस्कृति में भी पूर्ण श्रद्धा रखना है । राष्ट्रीय एकता का भाव तभी उत्पन्न हो सकता है जब वहाँ के सभी लोगों में पारस्परिक एक–सूत्रता, एक दूसरे के प्रति सहानुभूति और अपनत्व की भावना हो । राष्ट्रीय एकता ही एक ऐसी शक्ति है जो एक विशेष भूभाग पर बसे निवासियों की अनेकता में एकता को बनाए रखने में समर्थ होती है । राष्ट्रीय एकता के अंतर्गत भौगोलिक एकता, शासन की एकता, भावनात्मक एकता, सांस्कृतिक एकता, जातीय एकता, भाषिक एकता, समान आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हित आदि तत्व अंतर्भूत होते हैं ।

प्राचीन भारतीय काव्य साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास उस अर्थ में नहीं हुआ जिस अर्थ में आधुनिक काल में हुआ है । भारत में राष्ट्र की संकल्पना ऋचाओं, वेदों, उपनिषदों, शतपथ ब्राह्मण आदि अर्वाचीन ग्रंथों से चली आ रही है । भारतीय धर्म ग्रंथों में 'रास्ते चारू शब्द कुवर्ते जन यास्मीन प्रदेशें विशेषे तदराष्ट्रम' कहा गया है । इसका अर्थ है किसी विशेष देश के लोग एक विशेष भाषा द्वारा विचार विनिमय करेंगे तो उस देश को राष्ट्र कहा जाएगा । इससे स्थान विशेष को राष्ट्र मानने का अर्थ ध्वनित होता है । इस प्रकार प्राचीन ग्रंथों में भूमि, भाषा, जन समुदाय पर बल देते हुए विविध अर्थों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग हुआ है । यजुर्वेद का दशम अध्याय इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है । राजा के राज्याभिषेक के समय पढ़े जाने वाले मंत्रों में राजा द्वारा 'राष्ट्र में देही' कहलाकर राष्ट्र शक्ति की लालसा को प्रदर्शित किया गया है । उपनिषदों के महान संदेश को जातीय उत्थान के लिए किसी भी काल व युग में विस्मृत नहीं किया जा सकता । विद्वानों का मत है कि राष्ट्र शब्द का अर्थगत संकोच और विस्तार प्रायः राष्ट्रीय परिस्थितियों पर ही

निर्भर रहता है । वैदिक काल सुख शांति का काल था, अतः उस समय में राष्ट्रीय भावना का इतना अधिक विस्तार नहीं हुआ था । राष्ट्र शब्द का अर्थगत स्वरूप 'वसुधैव कुटुंबकम्' को समाहित किये था । परंतु बाद में अशांति, दुर्व्यवस्था, आंतरिक कलह और विदेशी आक्रमणों की विषमता के कारण राष्ट्र शब्द अपने अत्यंत संकुचित अर्थ में ही जीवित रहा । आज की परिस्थितियों में यह आवश्यक नहीं रहा कि 'राष्ट्र' के उद्गम की अवस्था में राज्यत्व की स्थिति वर्तमान हो । वर्तमान समय की वैचारिक और भावनात्मक जीवन स्थितियों में राष्ट्र विचार एवं भावना की शक्ति का प्रतिरूप बन गया है, जिसमें आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक भावनाओं का पुट रहता है । भारतीय संस्कृति में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की उदात्त भावना के साथ जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ कहा गया है । यही कारण है कि मातृभूमि के प्रति प्रेम आदर की उदात्त भावना का उदय हुआ । इसी से प्रेरित होकर संतकाव्य में तत्कालीन परिस्थितियों में भक्तिभावना के साथ–साथ राजनीतिक पराधीनता, सामाजिक भेदभाव, सांस्कृतिक पतन को देखते हुए इससे बाहर निकलने का मार्ग प्रशस्त किया । संत नामदेव, कबीरदास, गुरुनानक, रैदास, तुकाराम, पलटूराम, संत रामदास आदि अनेक भक्त–कवियों ने भेदभाव तथा अमानवीय व्यवहार के विरोध में जो उपदेश दिये उसमें प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में कहीं–कहीं राष्ट्रीय एकता के भाव भी प्रकट हुए हैं । लगभग सभी संत कवि सामाजिक पतन के समय में जन्मे थे और उन्होंने सामाजिक चेतना की दिशा में एक नई राष्ट्रीयता को जन्म दिया । उनकी अप्रत्यक्ष राष्ट्रीयता का शंखनाद बाह्यशुद्धि से संबंधित न होकर आंतरिक शुद्धि का उद्घोष था, जो राष्ट्रीयता की पहली सीढ़ी है। भक्त संतों ने समाज और धर्म की सड़ी गली मान्यताओं में फंसी हुई जनता को आपसी भेद भूलाकर, सामाजिक–धार्मिक एकता, जातिगत एकता, हिंदू–मुस्लिम एकता व आपसी प्रेम भाईचारे का संदेश दिया ।

सांप्रदायिकता राष्ट्रीयता के मार्ग की एक बड़ी बाधा है । धर्म संप्रादय के नाम पर लोगों को बाँटकर सामाजिक एकता, शांति को समाप्त किया जाता है । संत कबीर समाज से इस विष को निकालना चाहते हैं । उनकी वाणी सांप्रदायिकता की आग को भड़काकर देश को जाति, धर्म के नाम पर बांटने वालों को फटकारती है–

**"कहाँ हिंदू मोर राम पियारा, तुरूक कहे रहमान ।**
**आपस में दोउ लड़ी–लड़ी मुये, मरम न काहु जाना ।।"**[1]

जाति के नाम पर समाज को तोड़ने वाले पंडित मुल्लाओं से वे सीधा सवाल करते हैं –"एक ज्योति तै सब उत्पाना, कौन ब्राह्मण कौन सुदा ।"[2] इस प्रकार वे जाति वर्ण के भेदभाव को गलत मानते हैं ।

संत दादूदयाल भी समाज में हिंदू–मुसलमानों के आपसी विरोध और बैर को देख सब के भीतर एक ही आत्मा होने की बात कहते हैं । राष्ट्रीय एकता की भावना को समाजोन्मुखी बनाते हुए वे सामान्य जनता से कहते हैं –

**"हम सब देखा सोढ़ी करि, दूजा नाही आन ।**
**सब घटै एक आत्मा, क्या हिन्दू–मिस्लमान ।"**[3]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरित् मानस' में सामाजिक राजनैतिक जीवन का आदर्श प्रस्तुत कर रामराज्य के नाम से सुखी सौहार्द्रपूर्ण राष्ट्र की कल्पना को सामने रखा है । वे समाजिक एकता सुख–शांति को बनाए रखने के लिए आपसी बैरभाव को त्यागकर समता स्थापित करने की बात कहते हैं –'वयरू न कर काहूसन कोई, राम प्रताप विषमता खोई ।' सामाजिक विषमता राष्ट्रीयता को हानि पहुँचाती है । जात–पात, धर्म के नाम पर लोगों में जो बैर होता है, इसके मिट जाने से मनुष्य मनुष्य के बीच की विषमता भी दूर हो जाएगी, इससे समाज में बंधुत्व भाव का विकास होगा । तुसलीदास जी संत–असंत, शक–हूण, पठान, पशु–पक्षी सभी को समदर्शी मानने की बात कहते हैं । वन्दऊ सबहिं राम के नाते–

**"आकर चारि लाख चौरासी**

**जाति जीव जल थल नभ वासी**
**सीय राममय सब जग जानी**
**करऊ प्रनाम जोरि जुग पानी ।"[4]**

प्रकृति सब को समान भाव से देखती है । सूरज, चाँद–सितारे, बादल, आकाश, पेड़–पौधे ये मनुष्य मनुष्य में भेद नहीं करते । वे सभी को समान रूप से लाभ प्रदान करते हैं । ऊँच–नीच का भेदभाव नहीं करते। यह तो मनुष्य ही है जो ऊँच–नीच का भेदभाव करके समाज में अशांति फैलाता है । जैसे हवा पानी सबसे समभाव रखते हैं वैसे ही मनुष्य को होना चाहिए। तुलसीदास जी कहते हैं –

**"नीच निवारहिं निरस तरू, तुलसी सींचहि ऊख ।**
**पोषद पयद समान सब, विष पियूष के रूख ।"[5]**

वे कहते हैं लोग काम में न आने वाले वृक्ष, पेड़ पौधों को उखाड़ फेंकते हैं और रसभरे ऊख को सींचते हैं परंतु बादल विष–अमृत, काम में आने वाले न आने वाले सभी वृक्षों पर पानी बरसाता है । इसी तरह मानव को भी प्रिय–अप्रिय में भेद न करके सबके साथ समान प्रेम भरा व्यवहार करना चाहिए । सभी के साथ समान व्यवहार सामाजिक एकता का मूल मंत्र है ।

धर्म सभी के साथ मानवता का व्यवहार करने की शिक्षा देता है, परंतु पाखंडी धर्मगुरू जाति–पाति के भेदभाव को बढ़ावा देते हैं, परंतु संत इस भेद को मिटाकर मानव एकता की बात करते हैं । संत रविदास भी कहते हैं समाज में ऊँच–नीच की भावना रखना गलत है, हम सभी एक ही नूर की संतान है –

**"रविदास एक ही नूर ते जिमि उपजन्यों संसार**
**ऊँच नीच किह विध भयें, ब्राह्मण अरू चमार ।"[6]**

तत्कालीन समाज में हिंदू–मुसलमानों का द्वेष भाव और हिंसा, मार–काट चरम पर था । निर्दोष लोग इसका शिकार होते थे इसे देख दादूदयाल का मन दुखी हो जाता । वे हिंदू तुरकों की एकता की बात का उपदेश देते हुए समाज में शांति और सद्भाव की कामना करते हैं –

**"हिन्दू तुरक न जाणों दोई ।**
**सांई सबनि का सोई हेरे और न दूजा देखौ कोई ।**
**कीट पतंग सबै जोनिन में जल थल संगि समाना सोई ।**
**पीर पैगम्बर देवा दानव मीर मलिक मुनिजन कौ मोहि ।"[7]**

इस प्रकार दादूदयाल सभी में ईश्वर का अंश देखते हैं और हिंदू–मुस्लिम में फर्क न करके सब को समान मानने की बात कहते हैं जो राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

धर्म अधर्म के फेरे में पड़कर लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूला देते हैं । मानवता से भरा सर्व हितकारी धर्म, जो समाज को कल्याण का मार्ग दिखाता है, उसे ही जाति संप्रदाय के कटघरों में बांटकर लोगों को एक–दूसरे से अलग कर दिया गया। इससे दुखी होकर संत रविदास कहते हैं–

**"जात पाते के फेरे में उलझे रहये सब लोग**
**मनुषता को खात हई, रवीदास जाति करिरोग ।"[8]**

सूरदास भी लोगों से जाति कुल नाम को न देखकर वत्सल बनने की बात कहते हैं –

**"राम भक्त वत्सल निज बानो,**

**जाति गोत कुल नाम गनत नहिं, रंक होय के रानो ।"[9]**

ईश्वर के आगे राजा हो या रंक सभी बराबर हैं । गुरुनानक भी कहते हैं कि सारी मनुष्य जाति एक ही नूर की उपज है। फिर किसी की निन्दा क्यों? कोई अमीर तो कोई गरीब क्यों?–

**"अल्लाह एके नूर उपान्यों, बाकी कैसी निन्दा ।**
**एक नूर ते सब जग उपन्यों, कौन भला को मंदा ।"[10]**

इस प्रकार हम देखते हैं कि संत भक्तों ने न केवल हिंदू–हिंदुओं के बीच के भेदभाव को मिटाया अपितु हिंदू–मुसलमानों के बीच वैमनस्य को भी दूर कर समाज में एकता लाने का प्रयास किया है । दादूदयाल कहते हैं–

**"दादू न हम हिन्दू होहिंगे ना हम मुसलमान**
**षट दर्शन में हम नहिं, हम राते रहमान ।"[11]**

महात्मा कबीर भी कहते हैं कि भगत अर्थात् जात–पात, ऊँच–नीच को न मानकर सभी को समान आदर देने वाले व्यक्ति ही कुल का नाम रौशन करते हैं ।

**"जेहि कुल भगत भाग बड़ होई,**
**बरन अवरन न गनिय रंक धनि, विमल वासि निज सोई ।**
**ब्राह्मण, छत्री, वैस, सूद्र सब, भगत समान न कोई ।"[12]**

इस तरह सभी संतों ने समाज में समानता, एकता कायम रखने की बात कही है । सभी संत सभी जीवों के प्रति समदर्शी भाव रखने का संदेश देते हैं । भेद भाव को दूर कर जन कल्याण और देश समाज के उत्थान की बात करते हैं जो राष्ट्रीयता का एक महत्वपूर्ण तत्व है ।

**संदर्भ ग्रंथ–सूची:**


1. संपा. श्यामसुन्दर, कबीर वचनावली – संस्करण चौदहवाँ – पृ.सं. 82
2. संपा. श्यामसुन्दर, कबीर वचनावली – संस्करण चौदहवाँ – पृ.सं. 82
3. दादूयाल की वानी – प्रथम भाग – दोहा. 24 – पृ.सं. 136
4. तुलसीदास – रामचरितमानस – बालकाण्ड – दोहा सं. 7ध के बाद की चौपाई
5. तुलसी सतसई – अभिलाश दास – पृ.सं. 99
6. गुरु रविदास – वाणी और महत्व – पृ.सं. 379
7. संत सुधासार – पृ.सं. 364
8. संत रविदास – वाणी और महत्व – पृ.सं. 181
9. सूरदास – सूर सागर – (नागरी प्रचारणी सभा) स्कन्ध–1– पृ.सं. 11
10. नानक वाणी – (जपु जी पउडी) – पृ.सं. 9
11. दादूदयाल की वाणी – प्रथम भाग– पृ.सं. 78
12. संत सुधासार – पृ.सं. 107